



# International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2021; 7(1): 228-232

© 2021 IJSR

[www.anantaajournal.com](http://www.anantaajournal.com)

Received: 22-10-2020

Accepted: 02-12-2020

डॉ० मोहन लाल

सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय  
ठियोग, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

## श्रीद्भागवतपुराण में धर्म

डॉ० मोहन लाल

सारांश :-

संस्कृत वाङ्मय में पौराणिक साहित्य का एक विशिष्ट स्थान है। पुराणों में भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है। इसके अध्ययन के बिना मानव का ज्ञान ही अपूर्ण रहता है। श्रीमद्भागवतपुराणानुसार धर्म का फल मोक्ष है उसकी सार्थकता अर्थ प्राप्ति में नहीं है अर्थ केवल धर्म के लिए है। भोग विलास उसका फल नहीं माना गया है। यद्यपि वेद भारतीय-धर्म के मूलधार हैं, पर केवल उन्हीं के पठन-पाठन से मनुष्य के सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, अतः चाहे मनुष्य चारों वेदों का उपनिषदों सहित अध्ययन कर ले पर यदि उसे पुराणों की जानकारी नहीं है, तो उसे विद्वान् नहीं कहा जाएगा। लोक-जीवन के सभी पक्ष इनमें अच्छी तरह प्रतिपादित हैं। ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं मनुष्य-जीवन का कोई ऐसा अंग नहीं जिसका निरूपण पुराणों में न हुआ हो। जिस विषय को अन्य माध्यमों से समझने में अत्यधिक कठिनाई होती है, वे अत्यन्त रोचक ढंग से सरल भाषा में आख्यानादिरूपेण पुराणों में वर्णित हुए हैं। श्रीमद्भागवतपुराण में धर्म के तीस लक्षण वर्णित हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में धर्म के इन्हीं लक्षणों का आचरण सभी मनुष्यों का परम धर्म कथित है।

कूट शब्द:- श्रीद्भागवतपुराण, सत्य और शाश्वत आत्मा, धर्म

प्रस्तावना

धर्म

धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना। महाभारत में युधिष्ठिर, जो स्वयं धर्मराज के नाम से जाने जाते हैं, ने कहा है:-

“धारणात् धर्म इत्याहुः तस्मात् धारयते प्रजाः।।”<sup>1</sup>

धर्म को कौन धारण करता है? इस प्रश्न के समाधान में धर्म को शरीर धारण करता है। शरीर है तो धर्म है, धर्म है तो शरीर।

‘शरीरं माध्यम खलु धर्म साधनम्।’

अर्थात् शरीर ही धर्म के साधन का माध्यम है। वस्तुतः धर्म शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की धृ धातु से हुई है जिसका है, स्वभावतः धारण करना। इस तथ्य पर विचार किया जाय तो भला कोई भी मनुष्य या वस्तु जिसको धारण कर सकता है। नियम यह है कि स्व-स्वरूप की ही धारणा सम्भव है। हम सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा से भिन्न और किसी वस्तु अथवा चिन्ह आदि को पूर्णरूपेण कैसे धारण कर सकते हैं, क्योंकि शास्त्रों में कहा है ‘तत्त्वमसि’। विभिन्न मत-मतान्तर अथवा मान्यताएँ इस परम सत्य को पहचानने के साधन मात्र हैं। यदि हम साध्य को ही साधन समझ लेंगे, रास्ते को ही मंजिल समझ लेंगे तो निश्चितरूपेण दुःखी होंगे। यही कारण है कि आज धर्म का अत्यधिक प्रचार होने पर भी दुःख कम होने की अपेक्षा बढ़ता जा रहा है।

हम धर्म से दूर नहीं जा सकते, क्योंकि उसके बिना जीवन में समयात् एवं परिपूर्णता नहीं आ सकती। यदि धर्म अपने विकसित रूप में जीवन में व्यक्त होने लगे तो मनुष्य अमरता को प्राप्त कर सकता है और वह वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रगति का सूत्रधार बन सकता है। धर्म की इस उपादेयता को स्पष्ट करते हुए बहुत समय पूर्व उपनिषद्कारों ने कहा था :-

धर्मात् अर्थरुच कामरुच सर्वधर्मकिन्ने सेव्यते।

भागवतपुराणानुसार मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो निरन्तर बनी रहे, ऐसी भक्ति से आनन्दस्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृत्कृत्य हो जाता है।<sup>2</sup> धर्म का फल मोक्ष है उसकी सार्थकता अर्थ प्राप्ति में नहीं है।

Corresponding Author:

डॉ० मोहन लाल

सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय  
ठियोग, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

अर्थ केवल धर्म के लिए। भोग-विलास उसका फल नहीं माना गया है।<sup>3</sup> भागवतपुराण के सप्तम स्कन्ध में महर्षि नारद ने युधिष्ठिर को धर्म के तीस लक्षण कहे- सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी, महात्माओं की सेवा, धीरे-धीरे सामाजिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, मनुष्य के अस्मिन्पूर्ण प्रयत्नों का फल उल्टा होता है- ऐसा विचार, भौन, आत्मचिन्तन, प्राणियों को अन्नादि का यथायोग्य विभाजन, उनमें और विशेष करके मनुष्यों में अपने आत्मा तथा इष्टदेव का भाव, संतों के परम आश्रय भगवान् श्री कृष्ण के नाम-गुण-लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति वास्य, सख्य और आत्म समर्पण। यह तीस प्रकार का आचरण सभी मनुष्यों का परम धर्म तथा इसके पालन से सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं।<sup>4</sup>

### श्रीमद्भागवतपुराणानुसार धर्म के लक्षणों का वर्णन :-

**सत्यः-** सर्वत्र समरूप, सत्यस्वरूप परमात्मा का दर्शन ही सत्य है।<sup>5</sup> पिता के वचनों को सत्य सिद्ध करने हेतु प्रभु राम द्वारा वनवास स्वीकार किया गया, यद्यपि महाराज दशरथ ने अपनी पत्नी के अधीन होकर उन्हें वनवास जानने की आज्ञा दी थी, फिर भी सत्य के बन्धन में बंधकर उन्होंने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की थी।<sup>6</sup> भगवान् श्रीराम ने अपने पिता राजा दशरथ के सत्य की रक्षा के लिए राजपाट त्याग दिया और वे वन में भटकते रहे।<sup>7</sup> यह सत्य है कि भाग्य अनुकूल हो तो रास्ते में गिरी हुई वस्तु भी ज्यों की त्यों पड़ी रहती है। परन्तु भाग्य के प्रतिकूल होने पर घर के भीतर तिजोरी में रखी हुई वस्तु भी खो जाती है। जीव बिना किसी सहारे के देव की दयादृष्टि से जंगल में भी बहुत दिनों तक जीवित रहता है, परन्तु देव के विपरीत होने पर घर में सुरक्षित रहने पर भी मर जाता है।<sup>8</sup>

**दयाः-** दया शब्द का शाब्दिक अर्थ करुणा है। पस्तुत पुराण में वर्णन प्राप्त होता है कि द्रोपदी का यह कथन कि जिस प्रकार अपने बच्चों के मर जाने से वे दुःखी होकर रो रही थी, उनकी आखों से बार-बार आँसू निकल रहे थे। वैसे ही अहवथामा को मारने से उसकी माता पतिव्रता गौतमी न रोये। अतएव गुरुपुत्र को हननार्थ लाए जाने पर वे उसे छोड़ने के लिए कहती हैं।<sup>9</sup>

महाराज पृथु दृढसंकल्प, सत्यप्रतिज्ञ, ब्राह्मणभक्त, वृद्धों की सेवा करने वाले, शरणगतवस्त्र, सब प्राणियों को मान देने वाले और दीनों पर दया करने वाले थे।<sup>10</sup> कालकन्या वर्णन प्रसंग में कालकन्या का यह कथन कि पुरुष का सबसे बड़ा धर्म दीनों पर दया करना है।<sup>11</sup> राजर्षि भरत ने देखा कि बेचारा हरिणी का बच्चा अपने बन्धुओं से बिछुड़कर नदी के प्रवाह से बह था, इससे उन्हें बड़ी दया आई और वे आत्मीय सदृश उस मातृहीन बच्चे को अपने आश्रम पर ले आए।<sup>12</sup>

**तपस्याः-** कामनाओं का त्याग ही तप है।<sup>13</sup> ब्रह्मा जी तपस्वियों में सबसे बड़े तपस्वी हैं, उनका ज्ञान अमोघ है। उन्होंने एक सहस्र दिव्य वर्षपर्यन्त एकाग्रचित्त से अपने प्राण, मन, कर्मेन्द्रिय, और ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके ऐसी तपस्या की, जिससे वे समस्त लोकों को प्रकाशित करने में समर्थ हुए।<sup>14</sup> मुनि कर्म ने दीर्घकालपर्यन्त उग्र तपस्या की, जिसके फलस्वरूप वे बड़े तपस्वी जान पड़ते थे।<sup>15</sup> हिरण्यकशिपु द्वारा ब्रह्मा की तपस्या की गयी, फलस्वरूप अनेक श्रेष्ठ वर प्राप्त किए।<sup>16</sup> स्वयम्भुव मनु ने समस्त कामनाओं और भोगों से विरक्त होकर राज्य का त्याग किया। अपनी पत्नी शतरूपा के साथ तपस्या के लिए वन में चले गए। उन्होंने सुनन्दा नदी के किनारे पृथ्वी पर एक पैर पर खड़े रहकर सौ वर्षों तक घोर तपस्या की।<sup>17</sup> प्रतिष्ठान नगरी के अधिपति सुद्युम्न ने अपने पुत्र पुरुुरवा को राज्य देकर स्वयं तपार्थ वन की यात्रा की थी।<sup>18</sup> जब सुद्युम्न तपस्या के लिए वन में चले गए, तब वैवस्वत मनु ने पुत्र की कामना से यमुना के तट पर सौ वर्षों तक तपस्या की।<sup>19</sup> राजा अम्बरीष ने तपस्या, भक्तियोग और प्रजापालन रूप स्वधर्म के द्वारा भगवान् को प्रसन्न किया और धीरे-धीरे उन्होंने सब प्रकार की आसक्तियों का परित्याग किया।<sup>20</sup> वन जाकर परम संयमी सौरभि जी ने बड़ी घोर तपस्या की, शरीर को सूखा दिया तथा अहवनीय आदि अग्निधर्मों के साथ-साथ ही अपने-आपको परमात्मा में लीन कर दिया।<sup>21</sup>

**शौचः-** कर्मों में आसक्त न होना शौच है।<sup>22</sup> मैत्रेय जी ने विदुर को कहा कि जो पुरुष किसी प्रकार की कामना न रखकर अपने वर्णाश्रम के धर्मों द्वारा नित्य प्रति श्रद्धापूर्वक मेरी आराधना करता है, उसका चित्त धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है। चित्त शुद्ध होने पर उसका विषयों से सम्बन्ध नहीं रहता तथा उसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति

हो जाती है।<sup>23</sup> संस्कारों से ही गर्भ शुद्ध होती है यह प्रदर्शित करने के लिए अनेक वृष्टान्तों का उल्लेख किया गया है- समय से (नूतन जल, अशुद्ध भूमि आदि), स्नान से (शरीर आदि), प्रक्षालन से (वस्त्रादि), संस्कारों से (गर्भादि), तपस्या से (इन्द्रियादि), यज्ञ से (ब्राह्मणादि), वान से (धन-द्रव्यादि) और संतोष से (मन आदि द्रव्य) शुद्ध होते हैं, परन्तु आत्मा की शुद्धि आत्मज्ञान से होती है।<sup>24</sup>

**तितिक्षाः-** न्याय से प्राप्त दुःख सहने का नाम तितिक्षा है।<sup>25</sup> जीवों को भगवान् की लीला से ही वेह का संयोग होने के कारण सुख-दुःख, जन्म-मरण और शाप-अनुग्रह आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं।<sup>26</sup>

**उचित-अनुचित का विचारः-** विदुर जी बड़े ही भगवद्भक्त और भगवान् श्री कृष्ण के अनन्य सुहृद थे, अतः उन्होंने अपने भ्राता धृतराष्ट्र को उनके दुराचारी पुत्र दुर्योधन के सहित श्रीकृष्ण का अनादर करने के कारण अपराधी समझकर त्याग दिया।<sup>27</sup> ब्राह्मणों के परमभक्त भगवान् कृष्ण ने देवता को देखते ही अपने आसन से नीचे उतरकर उन्हें अपने आसन पर बैठाकर वैसी ही पूजा की, जैसे देवता उनकी किया करते हैं।<sup>28</sup> श्रीकृष्ण ने रुक्मी की दाढ़ी-मूँछ मूँडकर उसे कुरूप बनाया, तब बलराम ने उन्हें कहा कि अपने सम्बन्धी की दाढ़ी-मूँछ मूँडकर उसे कुरूप कर देना, यह एक प्रकार का वध ही है और रुक्मिणी को साध्वी सम्बोधित करके कहा कि भाई का रूप विकृत कर दिया गया है, यह सौचकर हम लोगों से बुरा मानकर द्वेष न करना, क्योंकि जीव को सुख-दुःख देने वाला कोई नहीं है उसे तो अपने ही कर्म का फल भोगना पड़ता है।<sup>29</sup>

**मन का संयमः-** जिस व्यक्ति का मन स्वच्छन्द होता है, वह पाप करता है, जिससे वह आत्मा का अहित करता है। जो व्यक्ति अपने मन पर नियन्त्रण कर लेता है और उसे सर्वज्ञ की आज्ञानुसार चलाता है, वह व्यक्ति अपना तथा दूसरों का कल्याण कर सकता है। भागवतपुराणानुसार मनु जी को भोग, मननशील, भक्तपरायण होने के कारण उन्हें किञ्चित् भी विचलित नहीं कर पाते थे।<sup>30</sup> राजा बर्हि ने समस्त विषयों की आसक्ति त्यागकर एकाग्रमन से भक्तिपूर्वक श्रीहरि के चरण-कमलों का चिन्तन करते हुए स्मरुप्य पद को प्राप्त किया।<sup>31</sup> जिसका मन वश में होता है उसके लिए सभी वश में होते हैं।<sup>32</sup>

**इन्द्रियों का संयमः-** इन्द्रिय संयम के अनेक वृष्टान्त भागवतपुराण में प्राप्त होते हैं। राजा परीक्षित शिकार खेलते हुए एक ऋषि के आश्रम में प्रविष्ट होते हैं और देखते हैं कि एक ऋषि आँखें बंद करके शान्त स्वभाव से आसन पर बैठे हुए थे। इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि के निरुद्ध हो जाने से वे संसार से ऊपर उठ गए थे, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- तीनों अवस्थाओं से रहित निर्विकार ब्रह्मरूप तुरीय पद में वे स्थित थे। अर्थात् इन्द्रियों को वश में किए हुए थे।<sup>33</sup> महर्षि अत्रि ने वन में प्राणायाम के द्वारा चित्त को वश में करके सौ वर्षपर्यन्त केवल वायु पीकर सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वों की कुछ भी परवाह न करके एक पैर पर खड़े रहे।<sup>34</sup> ध्रुव ने हवास को जीतकर बारह-बारह दिनों के उपरान्त केवल वायु पीकर ध्यान योग द्वारा भगवान् की थी। हवास को रोककर परब्रह्म का चिन्तन करते हुए खम्भे के समान एक पैर पर खड़े हो गए। उस समय उन्होंने शब्दादि विषय और इन्द्रियों के नियामक अपने मन को सब ओर से खींच लिया तथा अपने हृदय में स्थित हरि के स्वरूप का चिन्तन करते हुए चित्त को किसी दूसरी ओर न जाने दिया।<sup>35</sup> इन्द्रियों के संयम का नाम दम है।<sup>36</sup> धर्मराज-कृष्ण संवादावसर पर धर्मराज द्वारा श्रीकृष्ण को मनस्वी एवं संयमी कहा गया। उनके अनुसार जिन लोगों ने अपनी इन्द्रियों और मन को वश में नहीं किया है, वे उन्हें अपने वश में करने में सर्वथा असमर्थ होते हैं।<sup>37</sup> जरासंध और बलराम का युद्ध सप्ताईस दिन पर्यन्त चला जो कि इस बात की पुष्टि करता है कि दोनों ही योद्धाओं का अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण था।<sup>38</sup> सुदामा कृष्ण के परम मित्र थे। वे बड़े ब्रह्मज्ञानी, विषयों से विरक्त, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय थे।<sup>39</sup>

**अहिंसाः-** किसी प्राणी या जीव को न मारना। मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख न देना। अर्जुन जब अहवथामा के हनन हेतु उद्यत हुए तब श्रीकृष्ण ने उन्हें अहिंसा का पाठ पढ़ाते हुए कहा कि मूँड देना, धन छिन लेना और स्वस्थान से बाहर निकाल देना- यही ब्राह्मणधर्मों का वध है। उनके द्वारा एतदतिरिक्त शारीरिक वध का विधान नहीं है।<sup>40</sup> धर्मराज युधिष्ठिर को स्वजन के वध करने पर बड़ी चिन्ता होती है। वह कहते हैं कि जैसे कीचड़ से गंदला जल स्वच्छ नहीं किया जा सकता, मंदिरा से मंदिरा की अपवित्रता नहीं मिटाई जा सकती, वैसे ही बहुत से हिंस्र से यज्ञों के द्वारा एक भी प्राणी की हत्या का प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता।<sup>41</sup>

बलराम द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति उपदेश दिया गया कि उनके द्वारा विहित कार्य उचित नहीं था। स्वस्मबन्धी की दाढ़ी-मूँह मूँडकर उसे कुरूप कर देना, यह भी एक प्रकार का वध ही माना गया है।<sup>42</sup>

**ब्रह्मचर्यः**— ब्रह्मचर्य का अर्थ है सत्री इन्द्रियों पर काबू पाना। ब्रह्मचर्य में दो बातें होती हैं :- 1. ध्येय उत्तम होना। 2. इन्द्रियों और मन पर अपना नियन्त्रण होना। अर्थात् सत्री इन्द्रियों और विकारों पर सम्पूर्ण अधिकार।

राजा पृथु ने शीतोष्णादि सब प्रकार के द्रव्यों को सहन किया तथा वाणी और मन का संयम करके ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए प्राणों को अपने अधीन किया।<sup>43</sup> सप्तम स्कन्ध के द्वादश अध्याय में ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का विस्तृत वर्णन किया गया है। गुरुकुल में निवास करने वाला ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर दास के समान अपने को छोटा माने, गुरु के चरणों में सुदृढ़ अनुसारा रखे और उनके हित के कार्य करता रहे।<sup>44</sup>

विभु नामक मनुवंशज आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। उन्हीं के आचरण से शिक्षा ग्रहण करके अठारसी हजार व्रतनिष्ठ ऋषियों ने भी ब्रह्मचर्य का पालन किया।<sup>45</sup> भगवान् श्रीराम ने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह वर्ष तक अखण्ड रूप से अग्निहोत्र किया था।<sup>46</sup> मार्कण्डेय जी ने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा था। वे शान्त भाव से रहते थे। सिर पर जटाएँ बड़ा रखी थीं। वृक्ष की छाल का ही वस्त्र पहनते थे, कमण्डलु और दण्ड धारण करते थे, उन्हें शरीर पर यज्ञोपवीत और मेखला शोभायमान रहती थी। काले मृग का चर्म, रुद्राक्षमाला और यही उनकी पूँजी थी। यह सब उन्होंने अपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की पूर्त्यर्थ ही ग्रहण किया था।<sup>47</sup>

श्रीमद्भागवतपुराण में वर्णन प्राप्त होता है कि युधिष्ठिर गृहस्थाश्रम के धर्म से मुक्त होकर संन्यास ग्रहण करते हैं। वे अपने सब वस्त्र आभूषण आदि छोड़कर ममता और अहंकार से रहित होकर समस्त बन्धनों का त्याग करते हैं। उन्होंने वृद्ध भावना से वाणी को मन में, मन को प्राण में, प्राण को अपान में और अपान को उसकी क्रिया के साथ मृत्यु में पञ्चाभूतमय शरीर में लीन किया।<sup>48</sup> जो मनुष्य लोक और शास्त्र की दृष्टि से देने योग्य वस्तु का दान नहीं करता और शास्त्रदृष्टि से अधिकारी होकर भी ऐसा दान नहीं लेता, वे दोनों ही दुरागही और मूढ़ है अतएव शोचनीय है।<sup>49</sup>

पहलादनन्दन विरोचन से उनके शत्रु देवताओं ने ब्राह्मणों का वेष बनाकर उनसे आयु का दान माँगा और उन्होंने ब्राह्मणों के छल को जानते हुए भी अपनी आयु दे दी थी।<sup>50</sup> उदार शिरोमणि ने बलि ने ऐसा कर्म किया, जो दूसरों के लिए अत्यन्त कठिन है। उन्होंने जान-बूझकर अपने शत्रु को तीनों लोकों को दान कर दिया था।<sup>51</sup> विष्णु भगवान् ने ब्राह्मण का वेष धारण करके बलि का धन, ऐश्वर्य सब कुछ छिन लिया था। इसी त्याग से बलि की पवित्र कीर्ति सब ओर फैली और आज भी लोग बड़े आदर से उसका गान करते हैं।<sup>52</sup>

**स्वाध्यायः**— स्वाध्याय का शाब्दिक अर्थ है— स्वयं का अध्ययन कर जीवन निर्माण और सुधार पुस्तकों को पढ़ना, परमात्मा और मुक्ति की ओर ले जाने वाले ग्रन्थों का अध्ययन, श्रवण, मनन, चिन्तन आदि करना स्वाध्याय कहलाता है। वस्तुतः आत्मचिन्तन का नाम ही स्वाध्याय है। श्रीमद्भागवतपुराण में दधीचि मुनि ने देवताओं से कहा कि उनके द्वारा देवों के मुखारविन्द से धर्म की बात का श्रवण का श्रवण करने हेतु उनकी याचना के प्रति उपेक्षा दिखायी थी। वे आत्मचिन्तन करते हुए कहते हैं कि वे अपने प्रिय शरीर को उन्हें समर्पित कर देंगे, क्योंकि एक दिन यह शरीर उन्हें स्वयं ही छोड़ देगा।<sup>53</sup> प्रस्तुत पुराणानुसार वेदों के स्वाध्याय के लिए अपना सारा जीवन आचार्य की सेवा में ही समर्पित कर देना चाहिए।<sup>54</sup>

**सरलताः**— सरलता का अर्थ होता है एक सरल चित्त। एक मन जो भटका हुआ नहीं रहता, एक मन जो जैसे को तैसे ही देखे। एक मन जो धारणाओं में नहीं रहता। दिति, कश्यप जी से कहती है कि इन्द्र ने विष्णु के हाथों से उनके दो पुत्रों को मरवाकर उन्हें निपृती बनाया है अतः वह उनसे (कश्यप से) ऐसे वरदान की कामना करती है कि उन्हें ऐसे अमर पुत्र को प्रदान करे जो इन्द्र को मार डाले।<sup>55</sup> एक अन्य प्रसंग में सरलता नामक धर्म के लक्षण के दर्शन होते हैं— महलों में रहकर मति-गति से परे की लीला करने वाले अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण अपने आत्मानन्द में मग्न रहते हुए लक्ष्मी जी की अंशस्वरूपा उन पत्नियों के साथ ठीक वैसे ही विहार करते हैं जैसे कोई साधारण मनुष्य घर-गृहस्थी में रहकर गृहस्थ धर्म के अनुसारा आचरण करता हो।<sup>56</sup> सुदामा ने पत्नी के निवेदन के उपरान्त जब श्रीकृष्ण सदन में जाने का निश्चय किया तो उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि घर में यदि कोई वस्तु देने के योग्य है तो वे उन्हें दे। तब उस ब्राह्मणी ने पास पड़ोस

के ब्राह्मणों के घर से चार मुट्टी चिचड़े माँगकर एक कपड़े में बाँधे और भगवान् को भेंट देने के लिए अपने प्रति को दिए।<sup>57</sup>

**सन्तोषः**— सन्तोष का अर्थ है, जो कुछ है सुन्दर है, श्रेष्ठ है, इससे बेहतर सम्भव नहीं। महात्माओं का स्वभाव ही ऐसा होता है कि जगत् में जब दूसरे लोग उन्हें सुख-दुःखादि द्रव्यों में डाल देते हैं तब भी वे प्रायः हर्षित या व्यथित नहीं होते, क्योंकि आत्मा का स्वरूप तो गुणों से सर्वथा परे है।<sup>58</sup> नारद ने ध्रुव को उपदेशावसर पर कहा कि भगवान् की गति बड़ी विचित्र है अतएव उस पर विचार करके बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि दैववशा से जैसी भी परिस्थिति का सामना करना पड़े, उसी में सन्तुष्ट रहे।<sup>59</sup> श्रीकृष्ण के घर जाकर जब सुदामा को प्रत्यक्ष रूप में कुछ भी प्राप्त न हुआ फिर भी उन्होंने उनसे कुछ न माँगा। वे अपने चित्त की करतूत पर कुछ लज्जित से होकर भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शनजनित आनन्द में डूबते-उतरते अपने घर की ओर लौटे।<sup>60</sup>

**समदर्शीः**— वह जो सत्री को समान दृष्टि से देखता हो, न्यायप्रिय। वह जो सबके साथ समान व्यवहार करता हो, समव्यवहारी। जो देखने में किसी प्रकार का भेदभाव न करता हो, पक्षपातहीन। स्थिरचित्त, धैर्यशील।

ऋषियों के अनुसारा ब्राह्मण यदि समदर्शी और शान्तस्वभाव हो, तो भी यदि वह दीनों की उपेक्षा करता है तो उसका तप उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे फूटे हुए घड़े में से जल बह जाता है। “राजा नामि के पूज्य ऋषिजनों द्वारा प्रभु की स्तुत्यावसर पर कहा गया कि वे भक्तों के बड़े-बड़े काम करते हैं। उन मन्वन्तियों ने कामनावशा तुच्छ कार्य हेतु उनका आवाहन किया, यह उनका अनादर ही है। फिर भी समदर्शी होने के कारण उन अज्ञानियों की इस धृष्टता का वे क्षमा करे।<sup>61</sup> जब मनुष्य किसी भी प्राणी और किसी भी वस्तु के साथ राग-द्वेष का भाव नहीं रखता, तब वह समदर्शी हो जाता है तथा उसके लिये सत्री दिशाएँ सुखमयी बन जाती हैं।<sup>62</sup> भगवान् कृष्ण के लिए न तो प्रिय है और न ही अप्रिय। न तो उनका कोई आत्मीय सुहृद है और न तो शत्रु। उनकी उपेक्षा का पात्र भी कोई नहीं है। फिर भी जिस प्रकार कल्पवृक्ष अपने निकट आकर याचना करने वालों को उनकी इच्छित वस्तुएँ प्रदान करता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी, उन्हें जो जिस प्रकार भजता है उसे उसी रूप में भजते हैं।<sup>63</sup> एक शरीर के प्रति अग्निमान न होने के कारण न तो कोई उनका प्रिय है, न तो अप्रिय। वे सबमें और सबके प्रति समान है। अतः उनकी दृष्टि में न तो कोई उत्तम है और न ही अधम। यहाँ तक कि विषमता का भाव रखने वाला भी उनके लिए विषम नहीं है।<sup>64</sup> धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा श्रीकृष्ण को कहा गया कि आप सबके आत्मदर्शी और स्वयं आत्मानन्द के साक्षात्कार है, स्वयं ब्रह्मा है। उन्होंने कहा कि भगवान् के लिए “यह मैं हूँ और यह दूसरा, यह अपना है और यह पराया” इस प्रकार का भेद नहीं है।<sup>65</sup> श्रीकृष्ण और उद्धव के वर्णन प्रसंग में कृष्ण ने उद्धव से कहा कि उनका भक्त कृपा की मूर्ति होता है, वह किसी भी प्राणी से वैरभाव नहीं रखता और घोर से घोर दुःख भी प्रसन्नतापूर्वक सहता है। उसके जीवन का सार सत्य है और मन में किसी प्रकार की पाप वासना नहीं आती, वह समदर्शी और सबका भला करने वाला होता है।<sup>66</sup>

**महात्माओं की सेवा** :—शास्त्रों में महापुरुषों की सेवा को मुक्ति का और स्त्री-संगी-कामियों के संग को नरक का द्वार बताया है।<sup>67</sup> पाण्डवों द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ में जितने लोग आए थे। परमशीलवान् ऋत्विज, ब्रह्मवादी, सदस्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राजा, देवता, ऋषि-मुनि, पितर तथा अन्य प्राणी और अपने अनुयायियों के साथ लोकपाल इन सबकी पूजा एवं सेवा महाराज युधिष्ठिर ने की थी।<sup>68</sup> मिथिला नरेश ने ऋत्विज और आचार्य के साथ ऋषभ नन्दन नौ योगिहरों की पूजा की।<sup>68</sup>

**संसारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति** :— मनु ब्रह्मा जी की कृपा से अपना मनोरथ पूर्ण हो जाने पर देवर्षि नारद की आज्ञा से प्रियव्रत को सम्पूर्ण भूमण्डल की रक्षा का भार सौंपकर स्वयं विषय रूपी विषैले जल से भरे हुए गृहस्थाश्रम रूपी दुस्तर जलाशय की भोगेच्छा से निवृत्त हुए थे।<sup>69</sup> वेद, विधि के रूप में ऐसे कर्मों को करने की आज्ञा देता है, जिसमें मनुष्य की स्वभाविक प्रवृत्ति नहीं होती। संसार में देखा जाता है कि मैथुन, माँस और मद्य की ओर प्राणी की स्वभाविक प्रवृत्ति हो जाती है। तब उसे उसमें प्रवृत्त करने के लिए विधान तो ही ही नहीं सकता। ऐसी स्थिति में विवाह यज्ञ और सौत्रामणि यज्ञ के द्वारा ही उनके सेवन की व्यवस्था की गयी है, उसका अर्थ है— लोगों की उच्छृंखल प्रवृत्ति का नियन्त्रण, उनका मर्यादा में स्थापन। वास्तव में उनकी ओर से लोगों को हटाना ही श्रुति को अशीष्ट है।<sup>70</sup> नारद ने वसुदेव जी से कहा कि उनके आगे जिन भागावतधर्मों का वर्णन किया है यदि

वह भी श्रद्धा के साथ आचरण करोगे तो अन्त में समस्त आसक्तियों से छूटकर भगवान् के परम पद की प्राप्ति होगी।<sup>71</sup>

**अभिमानपूर्ण प्रयत्नों का फल विपरीत होता है-ऐसा विचार :-** दक्ष प्रजापति ने अहंकारवश बिना किसी अपराध के भगवान् शिव के प्रतिकूल आचरण किया था, अतएव सती ने युवावस्था में ही कोधवश योग के द्वारा स्वयं ही अपने शरीर का नष्ट कर दिया था, जिसके कारण दक्ष को पुत्री के विनाश का दुःख सहन करना पड़ा।<sup>72</sup> ब्राह्मणों के लिए तपस्या और विद्या परम कल्याण का साधन है इसमें कोई संदेह नहीं है। परन्तु यदि ब्राह्मण उद्वेग और अन्यायी हो जाय, तो वे ही दोनों उल्टा फल देने लगते हैं।<sup>73</sup> सुदर्शन नाम के विद्याधर ने एक दिन अंगिरा गोत्र के कुरूप ऋषियों को देखा। अपने सौन्दर्य के घमण्ड से उनकी हँसी उड़ायी। इस अपराध से कुपित होकर उन लोगों द्वारा उसे अजगर-योनि में जाने का शाप दिया था।<sup>74</sup>

**मौन :-** मौन का अर्थ है वाणी की पूर्ण शान्ति। शान्ति में वह शक्ति है जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ने में सार्थक सिद्ध होती है। मौन का अर्थ केवल चुप रहना नहीं है। मौन एक गहरी साधना है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने भीतर की परतों को हटाकर अपने वास्तविक स्वरूप का परिचय प्राप्त करता है। ऋषभदेव स्वपुत्रों को उपदेश देने के उपरान्त संन्यासी होकर सर्वथा मौन को धारण किया। कोई उनसे बात करना चाहता था तो भी नहीं बोलते थे। जड़, अंधे, बहरे, गूँगे, पिशाच और पागलों की तरह चेष्टा करते हुए वे अवधूत बनकर जहाँ-तहाँ विचरते रहते थे।<sup>75</sup>

**आत्म-चिन्तन :-** राजा परीक्षित को अपने किए हुए निन्दनीय कर्म का पश्चात्ताप होता है तथा वे अत्यन्त उदास होकर सोचने लगे कि उन्होंने निरपराध एवं स्वतेज को छिपाये हुए ब्राह्मण के साथ अन्याय पुरुषों के सदृश अतीव नीच व्यवहार किया।<sup>76</sup>

ध्रुव आत्मचिन्तन करते हुए विचारते हैं कि उनके द्वारा संसार पाश को काटने वाले प्रभु के पादपद्मों में पहुँचकर भी उनसे नारावान् वस्तु की ही कामना व याचना की गयी।<sup>77</sup> इन्द्र ने एक बार गुरु वृहस्पति की अवहेलना की। तदनन्तर वे आत्मचिन्तन करते हैं कि बड़े खेद का विषय है कि भरी सभा में मूर्खतावश उन्होंने ऐश्वर्य के मद् में चूर होकर निज गुरु का तिरस्कार किया। उनका यह कर्म अत्यन्त निन्दनीय था।<sup>78</sup>

**प्राणियों में आत्मा तथा इष्टदेव का भाव :-** मनुष्य का शरीर एक साधारण सी वस्तु है। प्रकृति से पैदा होता है और उसी में समा जाता है। ऐसी स्थिति में मूर्ख पशुओं के सिवाय और ऐसा कौन बुद्धिमान है जो इसको अपना आत्मा मानकर दूसरों को कष्ट पहुँचायेगा, उनके प्राण लेगा।<sup>79</sup> आत्मस्वरूप भगवान् समस्त प्राणियों में नियन्त्रात्मा से स्थित हैं। जो मनुष्य कहीं भी न्यूनताधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ता ही देखता है और साथ ही समस्त प्राणी और समस्त पदार्थ आत्मस्वरूप से स्थित है, अर्थात् वास्तव में भगवत्स्वरूप ही है, इस प्रकार जिसका अनुभव है, ऐसी जिसकी सिद्ध दृष्टि है उसे भगवान् का परम प्रेमी उत्तम भागवत् समझना चाहिए।<sup>80</sup>

**भगवान् कृष्ण के नाम-गुण-लीला आदि का श्रवण कीर्तन और स्मरण :-** भगवान् का कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवों के पापों को तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्तियों भगवान् का राजा परीक्षित ने बार-बार नमस्कार किया है।<sup>81</sup> जो लोग बार-बार भगवान् के उदार और कृपापूर्ण चरित्रों का श्रवण-कीर्तन करते हैं, उनके हृदय में प्रेममयी भक्ति का उदय हो जाता है। उस भक्ति से जैसी आत्मशुद्धि होती है, वैसी कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रतों से नहीं होती।<sup>82</sup> राजा अम्बरीष ने मन को श्रीकृष्ण के चरणारविन्दयुगल में, वाणी को भगवद्गुणानुवर्णन में, हाथों को श्रीहरि मन्दिर के मूर्जन-सेचन में और अपने कानों को भगवान् अच्युत की मङ्गलमयी कथा के श्रवण में लगा रखा था।<sup>83</sup>

**सेवा :-** भागवतपुराण में सेवा नामक धर्म का अनेक स्थलों पर वर्णन प्राप्त होता है:- वरुण और श्रीकृष्ण संवादावसर पर वरुण ने कहा कि जिन्हें प्रभु के चरण कमलों की सेवा का सुअवसर मिला है, वे भवसागर से पार हो जाते हैं। उन्होंने कहा कि उन्हें प्रभु दर्शन से सकल पुरुषार्थों की प्राप्ति हुई थी तथा प्रभु चरणों की सेवा का शुभ अवसर प्राप्त हुआ था।<sup>84</sup> लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति और तुष्टि (अर्थात् ऐश्वर्य, बल, ज्ञान, श्री, यश और वैराग्य ये षडैश्वर्यरूपशक्तियाँ),

इला (सन्धिनीरूप पृथ्वी शक्ति), उर्जा (लीला शक्ति), विद्या-अविद्या (जीवों के मोक्ष और बन्धन में कारणरूपा बहिरङ्ग शक्ति), ह्लादिनी, संवित् (अन्तरंग शक्ति) और मायादि शक्तियों मूर्तिमान् होकर प्रभु की सेवा कर रही हैं।<sup>85</sup>

**पूजा और नमस्कार :-** श्रीमद्भागवतपुराण में विभिन्न स्थलों पर सर्वत्र समान, शुद्धस्वरूप, परमपुरुष और सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव को नमस्कार किया गया।<sup>86</sup> राजर्षि भरत ने मृग शरीर छोड़ने की इच्छा होने पर धर्म की रक्षा करने वाले, धर्मानुष्ठान में निपुण, योगगम्य, संख्य के प्रतिपाद्य, प्रकृति के अधीरवर, यज्ञमूर्ति, सर्वान्तर्यामी श्रीहरि का नमस्कार किया।<sup>87</sup> देवर्षि नारद ने वासुदेव की स्तुति निम्न प्रकार से की :-

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि।  
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥  
नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये।  
आत्मारात्राय शान्ताय निवृत्तद्वैतवृष्टये ॥<sup>88</sup>

ययाति की पत्नी देवयानी द्वारा नमस्कार :-

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।  
सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥<sup>89</sup>

अकूर द्वारा नमस्कार :-

नमो विज्ञानमात्राय सर्व प्रत्ययहेतवे।  
पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥  
नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतरक्षणाय च।  
हृषीकेशं नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥<sup>90</sup>

**दास्य :-** जिसके मन में विषय भोग की इच्छा, कर्म प्रवृत्ति और उनके बीज-वासनाओं का उदय नहीं होता और एकमात्र भगवान् वासुदेव में ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्भक्त है।<sup>91</sup> नाग पत्नियों द्वारा भगवान् के प्रति दासता का भाव छलकता है। उन्होंने कहा कि वे प्रभु की दासियाँ हैं। वे प्रभु से निवेदन किया कि वे उन्हें आज्ञा दें कि वे उनकी किस प्रकार सहायता करें, क्योंकि जो श्रद्धासहित भगवान् की आज्ञाओं का पालन एवं सेवा करता है, वह सब प्रकार के बन्धनों से छुटकारा पाता है।<sup>92</sup>

**सख्य :-** सुदामा माली ने प्रभु से यह वर माँगा कि समस्त प्राणियों की आत्मा, सर्वस्वरूप उनके चरणों में अविचल भक्ति हो। प्रभु के भक्तों से उनका सौहार्द, मैत्री का सम्बन्ध और समस्त प्राणियों के प्रति दया का भाव बना रहे।<sup>93</sup> ब्राह्मण सुदामा जी को ऐश्वर्य की प्राप्ति होने पर वह विचार करते हैं कि भगवान् देते बहुत है पर उसे मानते बहुत थोड़ा। उनके द्वारा पदत मुट्ठी भर चिरुड़ा प्रभु द्वारा प्रेमपूर्वक स्वीकृत किया गया। वे सोचते हैं कि उन्हें प्रति जन्म उन्हीं की हितैषिता, उन्हीं की मित्रता और उन्हीं की सेवा प्राप्त हो।<sup>94</sup>

**आत्मसमर्पण :-** श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार अन्तिम धर्म आत्मसमर्पण है। उसमें वर्णन मिलता है कि पापी पुरुष की जैसी शुद्धि भगवान् को आत्मसमर्पण करने से और उनके भक्तों की सेवा करने से होती है वैसी तपस्या आदि से नहीं होती।<sup>95</sup> सुदामा का यह कथन कि उन्हें सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं सदा सर्वदा उन्हीं गुणों के एकमात्र निवास स्थान महानुभाव भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में उनका अनुराग बढ़ता जाय और उनके प्रेमी भक्तों का सत्संग प्राप्त हो, आत्मसमर्पण को ही प्रदर्शित करता है।<sup>96</sup>

**सन्दर्भ :-**

1. महाभारत, शान्तिपर्व, 109/1
2. स वै पुंसं धर्मो यतो भक्तिरथोक्षजे।  
अहेतुक्य प्रतिहता यथाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥ श्रीमद्भागवत पुराण, 1/2/6
3. धर्मस्य ह्यपवर्गस्य नार्थाऽर्थारोपकल्पते।  
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥ वही, 1/2/4
4. सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा ह्यमो वमः।  
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥

- सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।  
 नृणां विपर्ययहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्॥  
 अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्थतः।  
 तेष्व्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥  
 श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।  
 सेवेज्यावन्नतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥  
 नृणामयं परो धर्मःसर्वेषां समुदाहृतः।  
 त्रिंशत्लक्षणवान्नाजन्सर्वात्मा येन तुष्यति॥ वही, 7/11/8-12
5. वही, 11/19/3
  6. वही, 9/10/18
  7. वही, 9/10/14
  8. वही, 7/2/40
  9. वही, 1/7/47
  10. वही, 4/27/26
  11. वही, 5/8/7
  12. वही, 11/19/37
  13. वही, 2/9/8
  14. वही, 3/21/46
  15. वही, 7/4/1
  16. वही, 8/1/7-8
  17. वही, 9/1/42
  18. वही, 9/2/1
  19. वही, 9/4/26
  20. वही, 9/6/54
  21. वही, 11/9/38
  22. वही, 4/20/9-10
  23. वही, 10/5/4
  24. वही, 11/19/36
  25. वही, 6/17/29
  26. वही, 3/20/2
  27. वही, 10/52/28
  28. वही, 11/54/38
  29. वही, 3/22/34
  30. वही, 4/29/82
  31. वही, 6/14/20
  32. वही, 1/18/25-26
  33. वही, 4/1/19
  34. वही, 4/9/75-76
  35. वही, 11/19/36
  36. वही, 10/72/10
  37. वही, 10/72/40
  38. वही, 10/80/6
  39. वही, 1/7/57
  40. वही, 1/8/52
  41. वही, 10/54/37
  42. वही, 4/23/7
  43. वही, 7/12/1
  44. वही, 8/1/22
  45. वही, 9/11/18
  46. वही, 12/8/8-9
  47. वही, 1/15/39-40
  48. वही, 4/27/25
  49. वही, 8/19/14
  50. वही, 8/20/20
  51. वही, 5/17/3
  52. वही, 10/72/24
  53. वही, 6/10/7
  54. वही, 11/17/31
  55. वही, 6/18/37
  56. वही, 10/59/43
  57. वही, 10/80/14
  58. वही, 1/18/50
  59. वही, 4/8/29
  60. वही, 10/81/13
  61. वही, 4/14/41
  62. वही, 5/3/15
  63. वही, 9/19/15
  64. वही, 10/38/22
  65. वही, 10/46/37
  66. वही, 10/72/6
  67. वही, 11/11/29
  68. वही, 5/5/2
  69. वही, 10/75/25-26
  70. वही, 11/5/43
  71. वही, 5/1/22
  72. वही, 11/5/11
  73. वही, 11/5/45
  74. वही, 4/1/66
  75. वही, 9/4/70
  76. वही, 10/34/13
  77. वही, 5/5/29
  78. वही, 1/19/1
  79. वही, 4/9/31
  80. वही, 6/7/11
  81. वही, 10/10/12
  82. वही, 11/2/45
  83. वही, 2/4/15
  84. वही, 6/3/32
  85. वही, 9/4/18
  86. वही, 10/28/5
  87. वही, 10/40/55
  88. वही, 4/30/42
  89. वही, 5/14/45
  90. वही, 6/16/18-19
  91. वही, 9/29/19
  92. वही, 10/40/29-30
  93. वही, 11/2/50
  94. वही, 10/17/53
  95. वही, 10/41/41
  96. वही, 10/8/35
  97. वही, 6/1/16
  98. वही, 10/8/36